International Journal of Multidisciplinary Horizon

ISSN:**3049-2017**
IJMH 2024; 1(5): 33-36
© 2024 IJMH
www.themultijournal.com
Received: 17-12-2024
Accepted: 24-12-2024
Publish : 27-12-2024

मीनाक्षी कोठारी
शोधार्थिनी, योग विज्ञान विभाग
हिमालयीय विश्वविद्यालय,
देहरादून

डॉ. शोभा पाण्डेय
सहायक प्रोफेसर, योग विज्ञान विभाग
हिमालयीय विश्वविद्यालय,
देहरादून

Correspondence:
मीनाक्षी कोठारी
शोधार्थिनी, योग विज्ञान विभाग
हिमालयीय विश्वविद्यालय,
देहरादून

श्रीमद्भागवत महापुराण में वर्णित अष्टांगयोग

मीनाक्षी कोठारी, डॉ. शोभा पाण्डेय

श्रीमद्भागवत महापुराण में जहाँ एक ओर ज्ञानयोग के अन्तर्गत समस्त वृत्तियों से परे निर्गुण ब्रह्म तत्व का विवेचन हुआ है कर्मयोग के अन्तर्गत कर्म को फलभोग का हेतु माना गया है वहीं उपनिषदों और पातंजल योगसूत्र के अष्टांगयोग का प्रतिनिधित्व भी श्रीमद्भागवत महापुराण प्रमुखतः से करता है, इसमें वर्णित अष्टांगयोग में भी भक्ति का सम्पुट है, इस तरह यह राजयोग और भक्तियोग का अनूठा समन्वय प्रस्तुत करता है, प्रस्तुत शोधकार्य में शोधार्थिनी का उद्देश्य जनसाधारण को श्रीमद्भागवत महापुराण में वर्णित योग की विविध धाराओं से अवगत कराना तथा इस सहज मार्ग की ओर जीवन की दिशा धारा को प्रेरित कराना है।

योग एक सनातन विज्ञान है जिसे ब्रह्मा द्वारा निर्दिष्ट किया गया है, यह एक ऐसी साधना-पद्धति है जो मनुष्य को समस्त आवरणों और मानसिक विक्षेपों से मुक्त कर उसे ऐसा विशुद्ध अंतःकरण प्रदान करती है कि वह परमात्मा से सहज रूप से जुड़ जाता है, पौराणिक ग्रंथों में ऋषियों ने इसी योग के लक्ष्य को अत्यंत सरल और बोधगम्य रूप में आम जनमानस के समक्ष प्रस्तुत किया है।

भागवत महापुराण एक ओर जहाँ रोचक कथाओं के माध्यम से जनसाधारण को ईश्वर-भक्ति की ओर प्रेरित करता है, वहीं दूसरी ओर योग के गूढ़ रहस्यों को प्रकट कर उसके विभिन्न पक्षों जैसे ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग और अष्टांगयोगकृका विस्तृत विवेचन करता है, संपूर्ण भागवत में कृष्ण तत्व का ही सारभूत रूप में निरूपण हुआ है।

मनुष्य जीवन इस संसार का सर्वोत्कृष्ट वरदान है, क्योंकि मनुष्य योनि में ही अधिकतम विकास की पूर्ण संभावनाएँ हैं, मनुष्य की बहुमूल्यता का अनुभव हो जाए, तो जीवन में आने वाली सारी कठिनाइयाँ, कष्ट, विघ्न बाधायें, हमें हमारे उद्देश्य से भ्रमित नहीं कर सकती हैं, जीवन की सार्थकता उसके अपने दृष्टिकोण में है, साथ ही उसके द्वारा भावप्रवणता से किए गए कर्म में है, जीवन का आनंद किसी वस्तु या परिस्थिति में नहीं, बल्कि जीने वाले के दृष्टिकोण में हैं, जब हमारा दृष्टिकोण परिवर्तित हो जाता है, तब हमारा जीवन आनंदमय हो जाता है और फिर सत्कर्मों के माध्यम से हमारे चित्त पर छाए कुसंस्कार हटते चले जाते हैं और इस प्रक्रिया से चित्त शुद्धि के सिद्धि के आयाम प्रकट होते हैं और आत्मिक अभ्युदय के फलस्वरूप व्यक्ति, व्यक्तित्व के केंद्र से दूर जाने के स्थान पर अपने केंद्र की तरफ लौटता है, जहाँ उसे योग की अनुभूति होती है।

यद्यपि साधारण मनुष्य को जब यह मालूम होता है कि परमात्मा देश, काल और वस्तु-भेदों से परे, हमारी बुद्धि एवं इंद्रियों से अतीत, अपने स्वतः सिद्ध स्वरुप में स्थित है, तब वह यह सोचकर भयभीत हो किया और उन्होंने भगवान की कृपालुता का आश्रय लेकर उनकी सर्वव्यापकता एवं सर्वात्मकता के यथार्थ आधार पर देश, काल और वस्तुओं के भीतर ही भगवान के सानिध्य, उपासना और स्मृति का उद्घाटित किया,जिसे देखकर उनके सामने कृतज्ञता के भार से सिर स्वयं ही अवनत हो जाता है।

पौराणिक साहित्य भारत का सच्चा इतिहास है, इनसे ही भारतीय जीवन का आदर्श, भारत की सभ्यता, संस्कृति तथा भारत के विद्या वैभव के उत्कर्ष का वास्तविक ज्ञान प्राप्त होता है, पुराण का

शब्दार्थ है जो वृतान्त पहले हो गया हो, उसका जिसमें वर्णन हो वही पुराण कहलाता है, वायु पुराण में भी इस अर्थ की पुष्टि करते हुये कहा गया है-

यस्मात् पुरा ह्ययनतीदं पुराणं तेन तत् स्मृतम।

निरूक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।

अर्थात् जो वृतांत आदि काल से प्रचलित और प्राणित हैं उन्हें पुराण कहा जाता है, जो व्यक्ति पुराणों की वास्तविक व्याख्या और तात्पर्य को समझ लेता है वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है।

वास्तव में वैदिक वांग्मय में वर्णित विषयों का रहस्य पुराणों में उपाख्यानों द्वारा सहजता और स्पष्टता के साथ प्रकट किया है, इसलिए वेदों में निहित तत्वों के वास्तविक बोध हेतु पौराणिक साहित्य का श्रवण, मनन और अध्ययन अत्यंत आवश्यक माना गया है, पुराणों के परिज्ञान के बिना वेद, वेदांग, उपनिषद का ज्ञाता भी पूर्ण रूप से ज्ञानवान नहीं समझा जाता, इसीलिये श्रीमद्भागवत में भी इतिहास पुराण को पंचम वेद कहा गया है, इतिहास 'पुराणं चपंचमो वेद उच्यते' तात्पर्य यह है कि पुराण भी वेद के समान नित्य हैं।

पौराणिक साहित्य में श्रीमदभागवत का प्राकट्य और स्थान आर्य जाति में सब प्रकार की उन्नति के लिए प्रायः दो प्रकार के शास्त्र स्वीकार किये गये हैं श्रुति और स्मृति-श्रुति के शब्द नित्य होते हैं, सब युग मनवन्तर और कल्पों में उनकी आनुपूर्वी एक सी रहती है, सृष्टि के आरम्भ में प्रणव, गायत्री और मन्त्र संहिता के रूप में उनका अनाहत नाद होता है।

विशुद्ध अन्तःकरण वाले ऋषिगण उसका श्रवण करते हैं और पीछे अपने शिष्य परम्परा में उन्हीं शब्दों में उनका विस्तार करते हैं, दूसरे प्रकार के शास्त्र स्मृति कहलाते हैं, मन्वादि स्मृति, महाभारत आदि इतिहास, श्रीमद्भागवतादि महापुराण स्मृति शास्त्र के अन्तर्गत हैं, महान तपस्वी ऋषियों के परम पवित्र अन्तःकरण में भगवान की प्रेरणा से इन भावों का आविर्भाव हुआ करता है।

ये शास्त्र भाव रूप से सर्वदा एक ही रहते हैं परन्तु इनके शब्दों की आनुपूर्वी परिवर्तित होती रहती है, सृष्टि के प्रारम्भ में प्राचीन भावों की स्मृति होती है और स्मृति के आधार पर रचे जाने के कारण वे स्मृतिशास्त्र कहलाते हैं, श्रीमद्भागवत महापुराण ऐसा ही स्मृतिशास्त्र है जिसका संस्कृत साहित्य और विषेशतः पुराण साहित्य में निराला स्थान है।

श्रीमद्भागवत भगवद्तत्व को प्रकाशित करने वाला ऐसा ही अतुलनीय दीपक है, भगवान नारायण ने सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्मा को करूणावश इस ज्ञान प्रदीप का दान किया था, उन्होनें ही ब्रह्मा के रूप से नारद को नारद के रूप से, व्यास को व्यास के रूप, शुकदेव को शुकदेव के रूप से राजा परीक्षित को यह ज्ञान दिया। ब्रह्मनदी सरस्वती के पश्चिम तट पर व्यास जी के शम्याप्रास नामक आश्रम में ब्रह्म विद्या श्रीमद्भागवत की रचना हुई, श्रीमद्भागवत में गहरी अध्यात्मिक रहस्यों के संकेत छीपे हुये हैं, इस ग्रन्थ में ज्ञान, कर्म और भक्ति का अदभूत समन्वय है, यह वैदिक साहित्य और यौगिक ग्रन्थों के गहन विषयों का खुला रहस्य है, इसमें अध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक विज्ञान त्रय का बड़ा मनोरंजक वर्णन है, इसमें भारत के इतिहास के बहाने वैदों का रहस्य खोला गया है। भागवत के प्रत्येक अक्षर से एक अतीव सुन्दर अर्थ की उद्धरणा की जा सकती है, 'भा' अक्षर से भारूप प्रकाश स्वरूप सच्चिदानन्द का संकेत किया गया है- भा प्रकाशे चिदानन्दे, 'ग' अक्षर से उस भगवान के विषय में लौकिक गति का अर्थ निकलता है- गतिर्मस्यात्र लौकिकी, 'व' अक्षर भागवत को सब शास्त्रों में वरिष्ठ-श्रेष्ठ बतलाता है- वरिष्ठं सर्वशास्त्राणानाम्, 'त' अन्तिम अक्षर इस बात की ओर संकेत कर रही है कि यह ग्रन्थ इस भवार्णव से पार जाने के लिए एक मात्र तरणि-नाव है- तरीणभूतभवार्षवे।

इस प्रकार भागवत के अक्षरों की इस भावमयी सांकेतिक व्याख्या का यही अर्थ है कि यह ग्रन्थ प्रकाशरूपी परमात्मा के विषय में लौकिक उपाय को बतलाने वाला है, सब शास्त्रों से बढ़कर है तथा इस संसार रूपी समुद्र से पार जाने के लिए एक सुदृढ़ नौका का कार्य करता है।

श्रीमद्भागवत महापुराण जिसे हम मात्र पठन-पाठन, श्रवण-कीर्तन व मनन-प्रवचन आदि का ही विषय मानते हैं, उसमें भी यौगिक प्रणालियों का इस प्रकार वर्णन मिलता है कि कोई भी सहज और सरल तरीके से इसे अपनाकर अंतरंग चेतना का परिष्कार करते हुए योग के परम लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है, आधुनिक युग में श्रीमद्भागवत का श्रवण-मनन भी अति प्रासंगिक है क्योंकि इस की प्राप्ति सरल व सुगम है, यह साधना एक प्रकार से मन का यौगिक प्रशिक्षण है क्योंकि भागवत में कहा गया है कि इसके निरंतर सेवन से जब अशुभ वासनायें नष्ट हो जाती हैं तब भगवान श्रीकृष्ण की प्रति स्थायी प्रेम की प्राप्ति होती है जिससे रजोगुण और तमोगुण के भाव, काम और लोभ आदि शांत हो जाते हैं और चित्त इनसे रहित होकर सत्वगुण में स्थित एवं निर्मल हो जाता है, जो मनुष्य इसका रसास्वादन करता है वह सांसारिक भोगों को त्यागकर ईश्वरीय आनन्द में लीन हो जाता है और उस असीम आनन्द की अनुभूति ही योग का उत्कर्ष है, इसी अवस्था प्राप्ति हेतु प्रस्तुत शोध-पत्र के अन्तर्गत योग के विविध आयामों के अध्ययन की आवश्यकता महसूस की गई।

योग ब्रह्मा द्वारा निर्दिष्ट एक शाश्वत विज्ञान है, साधना पद्धति है, ऋषियों, तपस्वियों तथा योगियों द्वारा बतायी गई श्रेष्ठ विद्या है,

यह विशेष ज्ञान जीवन के महत्त्वपूर्ण तथ्यों को दर्शाने तथा विभिन्न भौतिक व आध्यात्मिक तथ्यों को साकार करने वाला है।

'योग' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के युज धातु से हुई है जिसका मतलब है - जोड़ना, इस एकीकरण का अर्थ जीव का परमात्मका के साथ मिलन होना, भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में योग को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करते हुए कहा है-तपस्वियों से योगी श्रेष्ठ, ज्ञानियों से योगी श्रेष्ठ है, कर्मयोगियों से भी योगी श्रेष्ठ है इसलिए हे अर्जुन तू योगी बन।

जीवात्मा 'परमात्म संयोगो योगः' कहते हुए भगवान यज्ञवल्क्य ने जिस योग की विवेचना की है वह केवल कल्पना नहीं, अपितु दैनिक जीवन की एक अनुभूत साधना है और एक ऐसा उपाय है, जिसके द्वारा अपने साधारण मानसिक क्लेशों एवं जीवन की अन्यान्य कठिनाइयों का बहुत सुविधापूर्वक निराकरण करने में सहयोग करता है।

जीवन के विस्तृत अध्ययन के बाद ऋषियों ने यह तत्वदर्शन खोजा और प्रतिपादित किया कि व्यष्टि और चित्तवृत्ति शून्य नहीं अपितु कृष्णरूपी परमब्रह्म वृत्ति के साथ एकाकार हो जाती है, वस्तुतः योग शब्द का विस्तार स्वयं व्यापक है जिसके अंतर्गत योग की क्रियापरक पद्धतियों भी आती हैं, परंतु योग के उन आयामों या परंपराओं का पूर्ण विवरण तो श्रीमद्भागवत में प्राप्त नहीं होता परंतु भागवताकार ने सांकेतिक ढंग से इनकी चर्चा की है, इन्ही संकेतों के आधार पर योग के विभिन्न आयामों का उल्लेखित है, जिसकी चर्चा करते हुए भगवान श्रीकृष्ण श्रीमद्भागवत में उद्धव से कहते हैं-

योगास्त्रयो मया प्रोक्ता नृणां श्रेयोविधित्समा।
ज्ञानं कर्म च भक्तिश्चनोपायोऽन्योऽकुत्रचित् ।।

अर्थात मैंने ही वेदों में एवं अन्यत्र भी मनुष्यों का कल्याण करने के लिए अधिकारी भेद से तीन प्रकार के योग कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग का उपदेश किया है। मनुष्य के परमकल्याण के लिए योग के अतिरिक्त और कोई उपाय कही नहीं है। श्रीमद्भागवत में योग के इन्हीं रहस्यों को प्रकाशित करने हेतु प्रस्तुत शोधकार्य में इस अध्याय के अन्तर्गत श्रीमद्भागवत महापुराण में अष्टाङ्ग योग के विविध आयामों को उजागर करने का प्रयास किया गया है।

श्रीमद्भागवत में अष्टांग योग का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है, जिसका प्रमुख उद्देश्य कैवल्य अर्थात मोक्ष की प्राप्ति है और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए विभिन्न साधनों का अवलोकन मिलता है, जिससे मनुष्य अविवेक से मुक्त होकर अपनी आत्मा को ज्ञानलोक से आलोकित करता है।

इन्हीं उपायों में से एक उपाय अष्टांग योग है, जिसमें शरीर और मन की समस्त क्रियाओं का निरोध कर जीवात्मा की मुक्ति ही मुख्यतः प्रतिपाद्य है।

श्रीलीलामृत भागवत में तीसरे स्कंध के 28वें अध्याय में अष्टांग योग की विधि विस्तार पूर्वक बताई गई है जिसमें भगवान कपिल अपनी माता देवहूती को अष्टांग योग की विधि की प्रक्रिया को समझाते हुए अष्टांग योग के अनुग्रह से भगवत प्राप्ति साधनों का अनुप्र्स्थ कर कहते हैं किः-

योगस्य लक्षणं वक्ष्ये सबीजस्य नृपात्मज।
मनो येनैव विधिना प्रसन्नं याति सत्पथम्।।

माताजी अब मैं तुम्हें सबीज (ध्येयस्वरूप के आलम्बन से युक्त) योग का लक्षण बताता हूँ, जिसके द्वारा चित्त शुद्ध एवं प्रसन्न होकर परमात्मा के मार्ग में प्रवृत्त हो जाता है।

स्वधर्माचरणं शक्त्या विधर्माच्च निवर्तनम्।
दैवाल्लब्धेन सन्तोष आत्मविच्चरणार्चनम्।।

यथाशक्ति शास्त्र विहित स्वधर्म का पालन करना तथा शास्त्रविरुद्ध आचरण का परित्याग करना, प्रारब्ध के अनुसार जो कुछ मिल जाय उसीमें सन्तुष्ट रहना, आत्मज्ञानियों के चरणों की पूजा करना।

ग्राम्यधर्मनिवृत्तिश्च मोक्षधर्मरतिस्तथा।
मितमेध्यादनं शश्वद्विविक्तक्षेमसेवनम्।।

विषय-वासनाओं को बढ़ाने वाले कर्मों से दूर रहना, संसार बन्धन से छुड़ाने वाले धर्मों में प्रेम करना, पवित्र और परिमित भोजन करना, निरन्तर एकान्त और निर्भय स्थान में रहना।

अहिंसा सत्यमस्तेयं यावदर्थपरिग्रहः।
ब्रह्मचर्यं तपः शौचं स्वाध्यायः पुरुषार्चनम्।।

मन, वाणी और शरीरसे किसी जीवको न सताना, सत्य बोलना, चोरी न करना, आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का संग्रह न करना, ब्रह्मचर्य का पालन करना, तपस्या करना (धर्मपालन के लिये कष्ट सहना), बाहर-भीतर से पवित्र रहना, शास्त्रों का अध्ययन करना, भगवान की पूजा करना।

मौनं सदाऽसनजयस्थैर्यं प्राणजयः शनैः।
प्रत्याहारश्चेन्द्रियाणां विषयान्मनसा हृदि।।

वाणी का संयम करना, उत्तम आसनों का अभ्यास करके स्थिरता पूर्वक बैठना, धीरे-धीरे प्राणायाम के द्वारा श्वास को जीतना, इन्द्रियों को मनके द्वारा विषयों से हटाकर अपने हृदय में ले जाना।

स्वधिष्ण्यानामेकदेशे मनसा प्राणधारणम्।
वैकुण्ठलीलाभिध्यानं समाधानं तथाऽऽत्मनः।।

मूलाधार आदि किसी एक केन्द्र में मनके सहित प्राणों को स्थिर करना, निरन्तर भगवान की लीलाओं का चिन्तन और चित्त को समाहित करना।

एतैरन्यैश्च पथिभिर्मनो दुष्टमसत्पथम् ।
बुद्ध्या गुंजीत शनकैर्जितप्राणो ह्यतन्द्रितः।।

इनसे तथा व्रत-दानादि दूसरे साधनों से भी सावधानी के साथ प्राणों को जीतकर बुद्धि के द्वारा अपने कुमार्गगामी दुष्ट चित्त को धीरे-धीरे एकाग्र करे, परमात्मा के ध्यान में लगावें।

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य विजितासन आसनम्।
तस्मिन् स्वस्ति समासीन ऋजुकायः समभ्यसेत्।।

सबसे पहले आसन पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करें, फिर प्राणायाम के अभ्यास हेतु किसी पवित्र स्थान में कुश, मृगचर्म आदि से युक्त आसन बिछाएँ, उस आसन पर शरीर को सीधा और स्थिर रखते हुए, सहजता और सुखपूर्वक बैठकर अभ्यास आरंभ करें।

प्राणस्य शोधयेन्मार्गं पूरकुम्भकरेचकैः।
प्रतिकूलेन वा चित्तं यथा स्थिरमचंचलम्।।

आरम्भ में बायें नासिका से पूरक, कुम्भक और रेचक करे, फिर इसके विपरीत दाहिनी नासिका से प्राणायाम करके प्राण के मार्ग को शुद्ध किया जा सकता है जिसके परिणाम स्वरूप चित्त स्थिर, शांत और निश्छल हो जाता है।

मनोऽचिरात्स्याद्विरजं जितश्वासस्य योगिनः।
वाय्वग्निभ्यां यथा लोहं ध्मातंत्यजति वै मलम्।।

जिस प्रकार अग्नि और वायु के प्रभाव से सोना अपनी सारी अशुद्धियाँ त्यागकर शुद्ध हो जाता है, उसी प्रकार जो योगी प्राणवायु पर नियंत्रण प्राप्त कर लेता है, उसका मन भी शीघ्र ही शुद्ध और निर्मल हो जाता है।

प्राणायामैर्दहेद्दोषान्धारणाभिश्च किल्बिषान्।
प्रत्याहारेण संसर्गान्ध्यानेनानीश्वरान् गुणान्।।

अतः योगी को उचित है कि प्राणायाम से वात-पित्तादि जनित दोषों को धारणा से मन को एकाग्र करे, प्रत्याहार से इंद्रियों को विषयों से काटे और ध्यान द्वारा राग-द्वेष जैसे मानसिक विकारों को दूर कर भगवद्धि की ओर अपनी चित्तवृत्तियों को मोड़े।

यदा मनः स्वं विरजं योगेन सुसमाहितम्।
काष्ठां भगवतो ध्यायेत्स्वनासाग्रावलोकनः।।

जब योग का अभ्यास करते-करते चित्त निर्मल और एकाग्र हो जाय, तब नासिका के अग्रभाग में दृष्टि जमाकर इस प्रकार भगवान की मूर्ति का ध्यान करें।

सोऽप्येतया चरमया मनसो निवृत्त्या-
तस्मिन्महिम्न्यवसितः सुखदुःखबाह्ये।
हेतुत्वमप्यसति कर्तरिदुःखयोर्यत् -
स्वात्मन् विधत्त उपलब्धपरात्मकाष्ठः।।

योगाभ्यास से प्राप्त हुई चित्त की इस अविद्या रहित लयंरूप निवृत्ति से अपनी सुख-दुःख रहित ब्रह्मरूप महिमा में स्थित होकर परमात्मतत्त्व का साक्षात्कार कर लेने पर वह योगी जिस सुख-दुःख के भोक्तृत्व को पहले अज्ञानवश अपने स्वरूप में देखता था, उसे अब अविद्याकृत अहंकार में ही देखता है।

देहोऽपि दैववशगः खलु कर्म यावत् स्वारम्भकं प्रतिसमीक्षत एव सासुः।
तं सप्रपंचमधिरूढसमाधियोगः स्वाप्नं पुनर्न भजते प्रतिबुद्धवस्तुः।।

उसका शरीर तो पूर्वजन्म के संस्कारों के अधीन है, अतः जब तक उसका आरम्भ का प्रारब्ध शेष है तब तक वह इन्द्रियों के सहित जीवित रहता है, किन्तु जिसे समाधिपर्यन्त योग की स्थिति प्राप्त हो गयी है। और जिसने परमात्मतत्त्व को भी भलीभाँति जान लिया है, वह सिद्धपुरुष पुत्र-कलत्रादि के सहित इस शरीर को स्वप्न में प्रतीत होने वाले शरीरों के समान फिर स्वीकार नहीं करता-फिर उसमें अहंता-ममता नहीं करता।

इस प्रकार तृतीय स्कन्ध के 28 वां अध्याय अष्टांगयोग के आठ अंगो का वर्णन आता है जिसमे यमपालन, नियमपालन, आसनपालन, प्राणायामपालन, प्रत्याहारपालन, धारणापालन, ध्यानपालन, समाधिस्थिरता का उपदेश भगवान कपिल अपनी माता देवहूति को दे रहे है तथा जिसमे सबसे अधिक विस्तृत चर्चा ध्यान की मिलती है, जिसका आशय भगवान श्री हरि का ध्यान करके योग में स्थित होना है।

निष्कर्ष :-

श्रीमद्भागवत महापुराण केवल भक्ति और ज्ञानयोग का समन्वय ही नहीं प्रस्तुत करता, बल्कि इसमें वर्णित अष्टांगयोग के माध्यम से मनुष्य को परमात्मा के साक्षात्कार की दिशा भी दिखाता है।
अष्टांगयोग के आठों अंग साधक को क्रमशः चित्त की शुद्धि, इन्द्रिय-निग्रह और ध्यान की ओर ले जाते हैं, और अंततः समाधि में आत्मा और परमात्मा का मिलन संभव होता है।

इस प्रकार भागवत महापुराण का अष्टांगयोग, पातंजल योग की परंपरा को आगे बढ़ाते हुए उसमें भक्ति का अनूठा संयोग करता है। यही कारण है कि यह केवल राजयोग का साधन न होकर, भक्ति से परिपूर्ण होकर साधक को मोक्ष, कैवल्य और भगवद्प्राप्ति की ओर अग्रसर करता है

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. वायु पुराण
2. सिद्धान्त शिरोमणि
3. भागवत प्रसादी – पृ.सं. – 80
4. भागवत प्रसादी – पृ.सं. – 72
5. गरूड़ पुराण
6. श्रीमद्भगवद्गीता, गीताप्रेस, गोरखपुर - 3.28
7. श्रीमद्भागवत महापुराण, गीताप्रेस, गोरखपुर - 3/28/1-12
8. 58. श्रीमद्भागवत महापुराण, गीताप्रेस, गोरखपुर - 3/28/36-37